R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-7 रुपये, वर्ष-23, अङ्क-1 जनवरी 2023 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार-पत्र

मङ्गलायतन

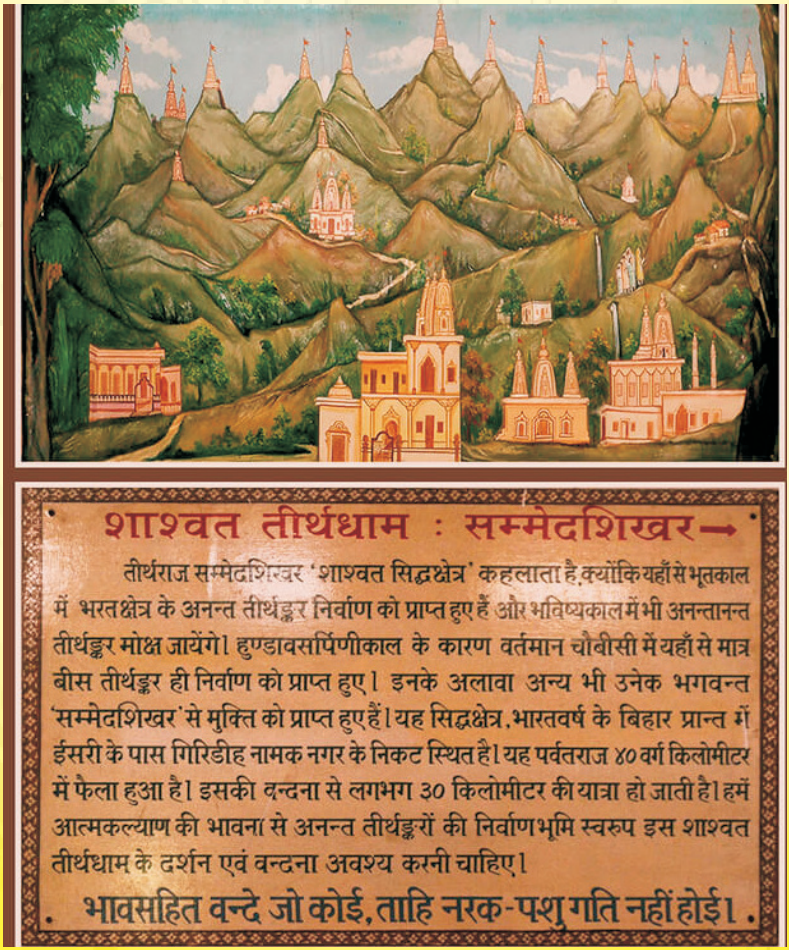

शाश्वत तीर्थधाम : सम्मेदशिखर→

तीर्थराज सम्मेदशिखर 'शाश्वत सिद्धक्षेत्र' कहलाता है,क्योंकि यहाँ से भूतकाल में भरतक्षेत्र के अनन्त तीर्थङ्कर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं और भविष्यकाल में भी अनन्तानन्त तीर्थङ्कर मोक्ष जायेंगे। हुण्डावसर्पिणीकाल के कारण वर्तमान चौबीसी में यहाँ से मात्र बीस तीर्थङ्कर ही निर्वाण को प्राप्त हुए। इनके अलावा अन्य भी उनेक भगवन्त 'सम्मेदशिखर' से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। यह सिद्धक्षेत्र,भारतवर्ष के बिहार प्रान्त में ईसरी के पास गिरिडीह नामक नगर के निकट स्थित है। यह पर्वतराज ४० वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। इसकी वन्दना से लगभग ३० किलोमीटर की यात्रा हो जाती है। हमें आत्मकल्याण की भावना से अनन्त तीर्थङ्करों की निर्वाणभूमि स्वरुप इस शाश्वत तीर्थधाम के दर्शन एवं वन्दना अवश्य करनी चाहिए।

भावसहित वन्दे जो कोई, ताहि नरक-पशु गति नहीं होई।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय के
बारहवें वार्षिकोत्सव की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-23, अङ्क-1 (वी.नि.सं. 2549; वि.सं. 2079) जनवरी 2023

धर्म बिन कोई नहीं अपना...

धर्म बिन कोई नहीं अपना।
सब सम्पत्ति धन थिर नहिं जग में, जैसे रैन सपना।टेक॥

आगै किया सो पाया भाई, याही है निरना।
अब जो करैगा सो पावैगा, तातैं धर्म करना॥1॥

ऐसे सब संसार कहत है, धर्म कियैं तिरना।
परपीड़ा बिसनादिक सेवैं, नरकविषैं परना॥2॥

नृप के घर सारी सामग्री, ताकैं ज्वर तपना।
अरु दारिद्रीकैं हू ज्वर है, पाप उदय थपना॥3॥

नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि विपत भरना।
वनगिरि सरिता अगनि युद्ध मैं, धर्महिका सरना॥4॥

चित 'बुधजन' संतोष धारना, पर चिन्ता हरना।
विपति पड़ै तो समता रखना, परमातम जपना॥5॥

साभार : मङ्गल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, मङ्गलायतन

क्या - कहाँ

ज्ञानी ज्ञान के ही कर्ता हैं 5

ज्ञान 12

श्री समयसार नाटक 16

सम्मेदशिखरजी पर विशेष 21

कवि परिचय 26

बाल वाटिका 29

जिस प्रकार-उसी प्रकार 30

समाचार-दर्शन 31

शुल्क :
एक प्रति : 07.00 ₹
आजीवन (15 वर्ष) : 1000.00 ₹

ज्ञानी ज्ञान के ही कर्ता हैं

[ज्ञानी अबन्धपरिणामी हैं; अबन्धपरिणामी ऐसे ज्ञानी के ज्ञानमय परिणाम कर्म आदि में निमित्त भी नहीं हैं–ऐसा समझाकर यहाँ ज्ञानी की अलौकिक दशा का स्वरूप बतलाया है।]

(श्री समयसार गाथा १०० तथा १०१ के अद्‌भुत प्रवचनों से)

इस कर्ताकर्म अधिकार में आत्मा का परद्रव्य तथा परभावों का अकर्तृत्व बतलाकर, अकेला ज्ञायकस्वभाव बतलाते हैं; उस ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता द्वारा सम्यग्दर्शनादि निर्मलभावों की उत्पत्ति होती है; धर्मी उसके कर्ता हैं और वही धर्मात्मा का कार्य है।

धर्मी जीव अपने निर्मलभावों में व्याप्त है, इसलिए उन निर्मलभावों के साथ तो व्याप्य-व्यापकभाव से कर्तृत्व है; अज्ञानी मलिनभाव करके उसका कर्ता होता है; परन्तु परद्रव्य की पर्याय में तो कोई आत्मा व्याप्त नहीं होता, इसलिए पर का कर्तृत्व तो है ही नहीं।

अब कोई पूछे कि—आत्मा पर में व्यापक होकर उसे भले ही न करे, परन्तु निमित्तरूप से तो पर का कर्ता है न? निमित्त-नैमित्तिक भाव से तो कर्ता-कर्मपना है न?—तो उसका उत्तर देते हुए आचार्यदेव १००वीं गाथा में कहते हैं कि—भाई, ज्ञानस्वभावी आत्मा वास्तव में निमित्तरूप से भी पर का कर्ता नहीं है। विकार को वास्तव में आत्मा नहीं कहते, जो निर्मल पर्याय में अभेद हुआ, उसी को आत्मा कहते हैं और ऐसा 'आत्मा' पर सन्मुख परिणमित न होता हुआ, कर्मादि पर का निमित्त भी नहीं होता। इस गाथा में अद्‌भुत-अलौकिक बात है।

— प्रथम, उपादानरूप से तो आत्मा आठ कर्म आदि परद्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं है।

— दूसरे, यदि आत्मा स्वभाव से कर्मादि पर का निमित्त हो, तो पर का

निमित्तपना तीनों काल बना ही रहे; इसलिए सदैव परोन्मुखता बनी ही रहे और स्वभाव में अभेद होने का अवसर ही न आये।

— योग तथा विकारी उपयोग तो कर्म के निमित्त हैं, परन्तु ज्ञानी धर्मात्मा तो उस योग और विकारी उपयोग के भी कर्ता नहीं हैं, तो फिर वे कर्म के निमित्तकर्ता कैसे होंगे ? निर्मल उपादान में से विकार का कर्तृत्व छूट गया है, इसलिए विकार के निमित्त से बँधनेवाले कर्म का निमित्तकर्तापना भी उन धर्मात्मा को छूट गया है।

— अज्ञानी के क्षणिक योग और विकारी उपयोग ही कर्म के निमित्त हैं, किन्तु उस विकार को आत्मा नहीं कहते।

— धर्मी का आत्मोन्मुख भाव भी यदि कर्मबन्ध का निमित्त होता रहे तो कर्म छूटेगा कब ? और आत्मा आत्मारूप कब होगा ? स्वभावोन्मुख होने से कर्म का निमित्तपना छूट जाता है।

आत्मा का स्वभाव ऐसा नहीं है कि कर्म का निमित्त हो। यदि स्वभाव से आत्मा कर्म का निमित्त हो, तब तो जगत में जहाँ-जहाँ कर्मादि अथवा घड़ा-वस्त्र-रथ-कुण्डलादि कार्य होंगे, वहाँ-वहाँ उनके सामने ही रहना पड़ेगा, इसलिए स्वोन्मुख होने का अवसर ही नहीं रहेगा। पर के कार्य में निमित्तरूप से उपस्थित होता रहेगा, इसलिए परसन्मुख ही बना रहेगा और स्वोन्मुखता तो होगी ही नहीं; एकान्त पर-प्रकाशकपना ही बना रहेगा, स्वप्रकाशन तो होगा नहीं, इसलिए सम्यग्ज्ञान नहीं होगा। इसलिए स्वभाव से आत्मा पर के कार्य का निमित्त है—ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्वभाव से विकार का कर्ता होकर वह कर्मबन्धन में निमित्त होता है; किन्तु उस मिथ्यात्व भाव को 'आत्मा' नहीं कहते; ज्ञानस्वभाव से परिणमित आत्मा ही वास्तव में आत्मा है और वह अथवा कर्मबन्धन का या पर के कार्य का निमित्तकर्ता भी नहीं है।

मेरा आत्मा निमित्त से तो पर का-कर्म का कर्ता है न ?—ऐसी जिसकी दृष्टि है, उसकी दृष्टि विकार पर है; आत्मा के स्वभाव पर उसकी दृष्टि नहीं

है; उसे तो अभी विकार करना है और कर्म का निमित्त बनना है, किन्तु स्व-परप्रकाशक ज्ञातारूप से नहीं रहता है। अज्ञानी पर का निमित्त होने जाता है, वहाँ स्वसन्मुखज्ञान को चूककर विकार के कर्तृत्व में अटक जाता है। ज्ञानी तो, 'मेरा आत्मा निमित्तरूप से भी पर का कर्ता नहीं है'—ऐसा जानकर उपयोग को पर से विमुख करके स्वभावोन्मुख करते हैं। इस प्रकार स्वभावोन्मुख हुआ स्व-परप्रकाशक उपयोग स्वयं तो पर के कार्य का निमित्तकर्ता नहीं होता, परन्तु उल्टा परज्ञेयों को ज्ञातारूप से जानते हुए उन्हें अपने ज्ञान का निमित्त बनाता है। देखो तो, दृष्टि बदली वहाँ सब कुछ बदल गया! पहले स्वयं अज्ञान के भाव से पर का निमित्त होता था, उसके बदले अब पर को अपने ज्ञान का निमित्त बनाता है। स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य द्वारा पर को ज्ञेयरूप से ही जानता हुआ, उसे अपने ज्ञान का निमित्त बनाता है।

— कुम्हार घड़े का तन्मयरूप से तो कर्ता नहीं है, किन्तु निमित्तरूप से कर्ता तो है न?—इसके उत्तर में तीन बातें हैं:—

— उसका त्रिकाली आत्मा तो घड़े का निमित्तरूप से भी कर्ता नहीं है। अब पर्याय में दो प्रकार—

— यदि वहाँ कुम्हार का आत्मा सम्यग्दृष्टि हो तो उस सम्यग्दृष्टि की निर्मल परिणति तो चैतन्य के साथ ही अभेद हुई है, इसलिए उसकी पर्याय भी घड़े की निमित्तकर्ता नहीं है। योग और कषायभाव तो स्वभाव से भिन्नरूप होने के कारण उस काल ज्ञानी उनका अकर्ता है।

— और यदि वह कुम्हार मिथ्यादृष्टि हो तो वह अज्ञानभाव से योग तथा कषाय का कर्ता होता है; (योग और उपयोग—ऐसा कहा, उनमें से उपयोग तो कषायरूप व्यापार है), ऐसे योग तथा उपयोग तो कर्मादि के निमित्त हैं; किन्तु उस निमित्तपने कर्तृत्व तो अज्ञानभाव में हैं, और उस अज्ञानभाव को 'आत्मा' ही नहीं कहते। ज्ञानस्वभावी आत्मा अकर्ता ही है।

अहा, योग और मलिन उपयोग का कर्तृत्व भी ज्ञानी की दृष्टि में नहीं है। जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसमें भी उस मलिनता का कर्तृत्व नहीं है;

तो फिर विकार के बिना आत्मा घट-पट या कर्म का निमित्तकर्ता कैसे होगा ? कर्म का निमित्त तो योग और कषाय है, इसलिए निमित्तकर्तापना उसी को लागू होता है जो योग और कषाय का कर्ता बनकर परिणमित होता है।

— कर्म की पर्याय हुई, वह उसका निश्चय, और मैं जीव उसका निमित्तरूप से व्यवहार कर्ता... देखो, यह अज्ञानी की विपरीत दृष्टि!! उसकी पर्याय में विकार का कर्तृत्व कभी नहीं छूटता।

— ज्ञानी तो जानता है कि मैं स्व-परप्रकाशक ज्ञाता, और जगत के पदार्थ ज्ञेयरूप से मेरे निमित्त! मेरी स्व-परप्रकाशक शक्ति विकसित हुई, वह निश्चय, और परज्ञेय निमित्तरूप हैं, वह व्यवहार।

जब तक पर का निमित्तकर्ता होने की बुद्धि है, तब तक पर सन्मुखबुद्धि होने से संसार ही है। जो स्वभाव में विकार को तन्मय मानता है, वही विकार का कर्ता होता है; और जो विकार कर्ता होता है, वही कर्मादि का निमित्त होता है। इसलिए जिसकी दृष्टि में पर का निमित्त होने की बुद्धि है, उसकी दृष्टि विकार में ही तन्मय हुई है, इसलिए विकार का ही सेवन तथा निर्विकार स्वभाव का अनादर कर-करके वह निगोद में जायेगा। ज्ञानी तो विकार का और चैतन्य का अत्यन्त भेदज्ञान करके, विकार से भिन्न अपने चिदानन्दस्वभाव की ही आराधना करते-करते, कर्म का भी निमित्त कर्तापना छोड़कर अपने सिद्धपद को साधता है।

निमित्तकर्ता होने की दृष्टि का फल निगोद....

स्वभावसन्मुख दृष्टि का फल सिद्ध दशा....

देखो, दृष्टि के फेर में सृष्टि का फेर है। जहाँ जिसकी दृष्टि पड़ी है, उस ओर उसकी सृष्टि अर्थात् पर्याय की उत्पत्ति होती है।

* * *

जो जिसका कर्ता हो, वह उससे पृथक् नहीं होता; आत्मा यदि पर का कर्ता हो तो वह पर से पृथक् नहीं हो सकता। यदि आत्मा घड़े को करता हो

(बनाता हो) तो वह घड़े से अभिन्नता के कारण आत्मा ही घड़ा हो जाये; किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। आत्मा पर का कर्ता नहीं है। अज्ञानभाव से आत्मा अपने विकारी भावों को करता है। जिसकी दृष्टि चैतन्य से बाह्य है, जिसकी वृत्ति बहिर्मुख है—ऐसा अज्ञानी जीव परसन्मुख वर्तता हुआ, क्षणिक योग और बहिर्मुख उपयोग द्वारा ही कर्म का निमित्तकर्ता होता है। यह निमित्तकर्तापना क्षणिक अज्ञान से ही है, किन्तु आत्मद्रव्य के स्वभाव में तो निमित्तकर्तापना भी नहीं है। विकार को करे और कर्म का निमित्त हो—ऐसा आत्मा के द्रव्यस्वभाव में है ही नहीं.... ऐसे स्वभाव को दृष्टि में—प्रतीति में लेना और स्वभाव सन्मुख होकर निर्मल-अकर्ता-चैतन्य-भावरूप से परिणमित होना, सो धर्म है, वह ज्ञानी धर्मात्मा का कार्य है।

द्रव्य-गुण और उसमें अभेद हुई निर्मल पर्याय ही आत्मा का परमार्थ है; विकार वह आत्मा का परमार्थ स्वरूप नहीं है; इसलिए विकार निमित्त और कर्म नैमित्तिक—ऐसे निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध पर जिसकी दृष्टि है, उसकी दृष्टि शुद्धात्मा पर नहीं है। भाई, अपनी दृष्टि को तू शुद्ध आत्मा में युक्त कर और निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की दृष्टि छोड़। जो उपयोग अन्तरस्वभावोन्मुख हुआ, उसमें से कर्म का निमित्त-कर्तापना छूट गया; उस उपयोग ने निजस्वभाव के साथ सम्बन्ध जोड़ा और कर्म के साथ का निमित्तसम्बन्ध तोड़ दिया।—इस प्रकार पर के साथ का सम्बन्ध तोड़कर अपने शुद्धात्मा में उपयोग को जोड़ना ही तात्पर्य है।

सम्यग्दृष्टि छोटी-सी बालिका हो या विशालकाय हाथी हो—वे सब अपने आत्मा का ऐसा ही अनुभव करते हैं कि—मेरा आत्मा कर्म का निमित्त भी नहीं है; जो कर्म का निमित्त हो, वह मेरा स्वरूप नहीं है। शरीरादि जड़ की क्रिया का मैं कर्ता तो नहीं हूँ, किन्तु उसका निमित्त भी नहीं हूँ, मैं तो निर्मल ज्ञानक्रिया का ही कर्ता हूँ।

इस मध्यलोक में, ढाई द्वीप के बाहर असंख्यात सम्यग्दृष्टि तिर्यंच हैं;

उनमें किसी को जातिस्मरणज्ञान होता है, किसी को अवधिज्ञान भी होता है; किसी को संयतासंयतरूप पाँचवाँ गुणस्थान (श्रावकपना) होता है; तिर्यंच को भी श्रावकपना होता है। मनुष्यों में तो सम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही हैं, किन्तु तिर्यंचों में असंख्यात हैं। समूर्च्छन के अतिरिक्त मनुष्यों की संख्या ही थोड़ी (संख्यात) है और उसमें भी सम्यग्दृष्टि तो बहुत कम हैं; तिर्यंचों की संख्या बहुत भारी (असंख्यात) है और उसमें असंख्यातवें भाग सम्यग्दृष्टि हैं; तथापि वे भी असंख्यात हैं। कोई मछली होते हैं; कोई सिंह, कोई हाथी, कोई बन्दर, कोई नेवला तथा कोई सर्प—ऐसे तिर्यंच जीव भी चैतन्य की प्रतीति करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं; वे सभी जीव अपने आत्मा का ऐसा ही अनुभव करते हैं कि—जो निर्मल भाव मेरे स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ, उसी का मैं कर्ता हूँ; मलिनभाव मेरे स्वभाव का कार्य नहीं है।

इस प्रकार ज्ञानी ज्ञान का ही कर्ता है—यह बात आचार्यदेव १०१ वीं गाथा में समझाते हैं:—

अज्ञानी अज्ञानभाव से मात्र अपने विकार को ही करता था और पुद्गलकर्म को निमित्त होता था। अब उससे विमुख होकर ज्ञानी-धर्मात्मा अपने ज्ञानस्वभाव से भरपूर ऐसे ज्ञानमयभाव को ही करता है और पुद्गलद्रव्य के परिणाम को अपने ज्ञान का ही निमित्त बनाता है। आचार्यदेव ज्ञानी का कार्य समझाते हैं कि—

— अज्ञानी तो अपने उपयोग को मलिन करके पुद्गल कर्म को निमित्त बनाता था।

अब ज्ञानी तो पुद्गल के परिणाम को अपने निर्मल उपयोग का ज्ञेय बनाता हुआ—तटस्थरूप से उसे जानता हुआ—उसमें युक्त हुए बिना उसका ज्ञाता रहता हुआ—उसे अपने ज्ञान का ही निमित्त बनाता है।

ज्ञेय-ज्ञायकरूप निर्दोष सम्बन्ध के अतिरिक्त ज्ञानी को पर के साथ दूसरा कोई सम्बन्ध नहीं है; विकाररूप निमित्त-नैमित्तिक उसका टूट गया

है। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध में तो अपने स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य की प्रसिद्धि है, उसमें कहीं विकार नहीं है। दृष्टि के बल से ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ज्ञानी को स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य का विकास ही हो रहा है; वे तो ज्ञानमय भाव में (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ज्ञानमयभाव ही हैं-उनमें) ही परिणमित होता है, उसके ज्ञानमयभाव में समस्त आगम का सार आ गया है; वह जीव 'अबन्धपरिणामी' हो गया है।

अबन्ध स्वभावी तो समस्त आत्मा हैं, किन्तु ज्ञानी तो 'अबन्ध परिणामी' हैं। ज्ञानी के परिणाम अबन्ध हैं, बन्ध परिणाम ज्ञानी के हैं ही नहीं। अबन्ध परिणाम हुए, वे किसे निमित्त होंगे ? क्या वे कर्म के निमित्त होते हैं ?—नहीं; अबन्ध परिणाम तो ज्ञान और आनन्दमय हैं; ऐसे अबन्ध परिणामरूप से परिणमित होते हुए ज्ञानी विकार के कर्ता नहीं हैं, कर्म बन्ध के निमित्त नहीं हैं। वाह ! विकार से और कर्म से पृथक् ही हो गये !

प्रसिद्ध हो कि सम्यग्दर्शन वह संवर-निर्जरा और मोक्ष है तथा सम्यग्दृष्टि को आस्रव-बन्ध नहीं है और प्रसिद्ध हो कि मिथ्यात्व ही संसार है, मिथ्यादृष्टि को ही आस्रव-बन्ध है। अहा, दृष्टि की यह बात समझे तो सारी दशा पलट जाये।

ज्ञानावरणादि आठों कर्म, शरीरादि नोकर्म या रागादि भावकर्म—उन सबको ज्ञानी अपने, ज्ञानपरिणाम से भिन्न ही देखते हैं। उनके होकर, उन्हें नहीं जानते किन्तु तटस्थ होकर, उन्हें जानते हैं; ज्ञानमय रहकर ही जानते हैं। इस प्रकार ज्ञानी, ज्ञान के ही कर्ता हैं। **कौन सा 'ज्ञान'-कि जो अन्तरोन्मुख होकर अभेद हुआ है वह। यहाँ अकेले शास्त्रादि बाह्य ज्ञातृत्व को ज्ञान नहीं कहते; ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख होकर उसमें तन्मयरूप से आनन्द का अनुभव करता हुआ जो ज्ञान प्रगट हुआ—उसी ज्ञान के ज्ञानी कर्ता हैं।**

अहो! आचार्यदेव ने ज्ञानी का अलौकिक स्वरूप बतलाया है। ऐसे ज्ञानियों को नमस्कार हो!

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -18, अंक-6

.... गतांक से आगे

ज्ञान

[श्री समयसार-सर्व विशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचनों से]

अरे, तू अपने ज्ञानस्वभाव को तो देख। ज्ञानस्वभाव पर किसी का बोझ है ही नहीं। तुझमें तो तेरा ज्ञान-दर्शन स्वभाव है। अपने निजस्वभाव को आत्मा कभी छोड़ता नहीं है और परभाव को अपने में कभी ग्रहण नहीं करता। आत्मस्वभाव में परभाव का बोझ नहीं है। ऐसा आत्मस्वभाव स्वानुभव में लेने से तुझे मोक्षमार्ग का लाभ होगा।

स्वतन्त्र परिणमन में व्यवहार की हद कितनी ?

यद्यपि परमार्थ से ज्ञान, वह ज्ञान ही है; ज्ञान को पर के साथ सम्बन्ध नहीं है; ज्ञान स्वयं पर में नहीं जाता और पर को अपने में नहीं लाता; परन्तु ज्ञानसामर्थ्य ऐसा विकसित हुआ है कि सामनेवाले पदार्थों को अपने में ज्ञेय बनाता है। पहले पदार्थों को राग-द्वेष का निमित्त बनाता था, उसके बदले अब पदार्थों को ज्ञान का निमित्त बनाता है। ज्ञान ज्ञानरूप से परिणमित हुआ, वहाँ उसे पदार्थ ज्ञेयरूप से निमित्त हुए; यह तो ठीक, परन्तु यह ज्ञान भी ज्ञेयपदार्थों को निमित्त हुआ। पुद्गलादि पदार्थ ज्ञेयरूप परिणमित होते हैं, तो उनके अपने ही स्वभाव से होते हैं; कहीं ज्ञान उन्हें परिणमित नहीं करता; परन्तु उसके ज्ञेयपने में इस चेतयिता का ज्ञान निमित्त होता है। देखो, यह व्यवहार! एक-दूसरे का कुछ करे, ऐसा तो व्यवहार नहीं है। ज्ञाता-ज्ञेयपने का सम्बन्ध इतना ही व्यवहार है। ज्ञान पर को जाने, इतना व्यवहार परन्तु ज्ञान पर को जानते हुए उसमें कुछ कर डाले या परवस्तु ज्ञान में ज्ञात होने से ज्ञान को कुछ राग-द्वेष करा दे-ऐसा नहीं है। व्यवहार में भी दोनों का स्वतन्त्र परिणमन स्वीकार करके निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बतलाया है। इतनी ही व्यवहार की सीमा है।

विकसित होता हुआ ज्ञान परद्रव्य को राग-द्वेष का निमित्त नहीं बनाता।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र की जो निर्मल पर्याय विकसित हुई, उसमें व्यवहार कैसा होता है, वह यहाँ बतलाते हैं। पर के साथ का सम्बन्ध तोड़कर

अन्तर्मुख स्वभाव में तन्मयरूप से परिणमित ज्ञान, विकल्प से पृथक् हुआ, वहाँ अब उस विकल्प के साथ उसे कर्ताकर्मपना तो नहीं रहा, परन्तु उलटा वह विकल्प ज्ञेयरूप से ज्ञान में निमित्त हुआ। प्रतिकूल संयोग आने से क्या ज्ञान में प्रतिकूलता आ गई ? तो कहते हैं कि नहीं; वह तो मेरे ज्ञान का निमित्त है, वह मुझे द्वेष का निमित्त नहीं है, परन्तु ज्ञान का ही निमित्त है। उसी प्रकार अनुकूल संयोग आये, वहाँ भी ज्ञानी तो निजभाव से ज्ञानरूप ही परिणमित होता हुआ उसे ज्ञान का ही निमित्त बनाता है। ज्ञानी ज्ञानरूपता को छोड़कर अन्यभावरूप से परिणमित होता ही नहीं। ज्ञान स्वयं किसी संयोगरूप परिणमित नहीं होता और संयोग को अपनेरूप से परिणमित नहीं करता। ऐसा ज्ञान, वह निजस्वरूप है। ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हों, वह तो ज्ञान के विकास की प्रसिद्धि करते हैं। विकासशील ज्ञान में प्रतिभासित ज्ञेय कहीं राग-द्वेष का कारण नहीं होते।

ज्ञान ज्ञानरूप; ज्ञेय ज्ञेयरूप; ज्ञाता को रागद्वेष कैसे ?

ज्ञान शरीर को जाने, वहाँ ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होता है; शरीर शरीररूप परिणमित होता है; शरीर को जानते हुए ज्ञान कहीं शरीररूप नहीं हो जाता और शरीर के रोगादि कहीं ज्ञान में नहीं घुस जाते। दूर के पदार्थ हों या निकट के हों, ज्ञान तो दोनों से पृथक् का पृथक् रहकर ही जानता है। अहा, ज्ञान का स्वभाव क्या है, उसे जाने तो कितनी शान्ति! ज्ञान में पर का कोई हस्तक्षेप नहीं है। आत्मा जिसरूप परिणमित ही नहीं होता, उससे आत्मा को लाभ या हानि कैसे होंगे ? पर को जानते हुए आत्मा कहीं उस पदार्थ को अपने में नहीं लाता। ज्ञान ज्ञान ही है—यह निश्चय है; ज्ञान पर को जानता है—ऐसा पर के साथ का सम्बन्ध, सो व्यवहार है। व्यवहार में भी आत्मा ज्ञाता और परवस्तु ज्ञेय—इतना ज्ञाता-ज्ञेयपने का ही सम्बन्ध है, इससे विशेष कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्ञान का स्वभाव तो जानने का ही है, इसलिए वह छूट नहीं सकता। ज्ञाता पर्याय अपने में रहती है, पर में नहीं जाती। ज्ञाता ज्ञातास्वरूप ही रहे तो उसे सुख-दुःख क्या ? ज्ञेयरूप से सब समान हैं; वहाँ मैं इससे सुखी और इससे दुःखी—ऐसे दो भाग नहीं हैं और ज्ञान में भी ऐसा

स्वभाव नहीं है कि पदार्थ को जानते हुए उससे सन्तुष्ट या असन्तुष्ट हो। ऐसे ज्ञानस्वभाव को स्वीकार करना, वह प्रथम सत् का स्वीकार है।

ज्ञान की प्रतीति वहाँ मोक्ष का पुरुषार्थ

आत्मा ज्ञान से भरपूर है, उसमें से प्रवाह आता है। मेरी पर्याय में मोक्षदशा होनेवाली है; उस मोक्षदशा का अर्थात् सर्वज्ञता और पूर्णानन्द का सामर्थ्य वर्तमान में भी मेरे स्वभाव में भरा है।—इस प्रकार धर्मी जीव अन्तर्दृष्टिपूर्वक स्वभाव-सामर्थ्य का अनुभव करता है। ऐसे स्वभाव की प्रतीति के बिना मोक्ष का पुरुषार्थ प्रारम्भ नहीं होता।

अज्ञानी ज्ञान और ज्ञेय को एकमेक करता है

आत्मा अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा; ज्ञानभाव में तन्मय होकर परिणमित होती हुई वस्तु को ही परमार्थ आत्मा कहते हैं, राग को आत्मा नहीं कहते। ऐसे आत्मा को प्रतीति में—स्वानुभव में लिये बिना ज्ञानपर्याय में निश्चय क्या और व्यवहार क्या, उसकी खबर नहीं पड़ती। जिसे भिन्न ज्ञान की खबर नहीं है, वह ज्ञान-ज्ञेय को एक-दूसरे में किसी न किसी प्रकार एकमेक कर डालता है। उसे यहाँ समझाते हैं कि भाई, ज्ञान ज्ञान में ज्ञेय ज्ञेय में—दोनों भिन्न-भिन्न अपने-अपने में वर्त रहे हैं, एक का दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्ञेयों में कुछ छेदन-भेदन हो, उससे कहीं ज्ञान का छेदन-भेदन नहीं होता। चैतन्य वस्तु का दरबार कोई अनोखा है! उसमें किसी परज्ञेय का प्रवेश नहीं है तथा समस्त ज्ञेय ज्ञात होते हैं। ज्ञान की सीमा न टूटे, तथापि ज्ञेय उसमें ज्ञात हो, ऐसा व्यवहार है। ज्ञाता स्वयं ज्ञानमय ही परिणमित होता है, वह निश्चय है, उसमें किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है।—इस प्रकार ज्ञान की भाँति श्रद्धा, चारित्र आदि गुणों में निश्चय-व्यवहार यथायोग्य समझना।

चैतन्यशक्ति का ध्यान तृप्ति उत्पन्न करता है

तत्त्वानुशासन की १९२वीं गाथा में कहते हैं कि—अरिहन्त और सिद्ध का ध्यान करना चाहिए। वहाँ प्रश्न उठा है कि—अरिहन्तपद या सिद्धपद वर्तमान में तो आत्मा में नहीं है, फिर उसका ध्यान करना, यह तो झूठमूठ

बात है ! वहाँ उसका समाधान करते हुए कहते हैं कि हे भाई ! कुछ काल पश्चात् आत्मा में जो अरिहन्तपद और सिद्धपद प्रगट होनेवाले हैं, उन पर्यायों के साथ इस आत्मद्रव्य का सम्बन्ध वर्तमान में भी है; आत्मा में वे पर्यायें प्रगट होने की शक्ति भरी है; सर्वज्ञस्वभाव वर्तमान में भी शक्तिरूप से विद्यमान है; उसका ध्यान करने से तृप्ति, शान्ति एवं निराकुल आनन्द वर्तमान में भी अनुभव में आता है। यदि असत् हो तो उसके ध्यान से शान्ति कैसे होगी ? जैसे-किसी को प्यास लगी हो और मृग-मरीचिका में 'यह पानी है'—ऐसी असत् कल्पना से पानी की ओर दौड़े तो उससे कहीं प्यास नहीं मिटेगी; परन्तु वहाँ तो हमें अरिहन्त और सिद्धपद के ध्यान से आत्मस्वभाव की सन्मुखता होती है और चैतन्य के अमृतपान से अशान्ति मिटकर प्रत्यक्ष शान्ति का वेदन होता है, इसलिए वह ध्यान असत् नहीं किन्तु सत् है। सत्स्वभाव में जो सामर्थ्य भरा है, उसका ध्यान अवश्य तृप्ति उत्पन्न करता है। अरे, पूर्ण स्वभावसामर्थ्य वर्तमान में विद्यमान है, उसे अन्तर में देखे तो मार्ग खुल जाये और सब समाधान हो जायें।

मोक्षमार्ग की सिद्धि अभेदस्वभाव के आश्रय से है; व्यवहार द्वारा कुछ भी सिद्धि नहीं है।

आत्मा में कर्ता, कर्म, करण आदि जो छह कारक शक्ति है, वह भी वास्तव में पर से निरपेक्ष है। आत्मा वीतरागपर्यायरूप परिणमित हुआ, वह मोक्ष का निश्चयसाधन है। और वास्तव में तो साधक और साध्य ऐसे दो भेद से आत्मा को लक्ष्य में लेना, वह भी व्यवहार है। उस व्यवहार से (भेद के विकल्प से) क्या साध्य है ? तो कहते हैं कि कुछ भी साध्य नहीं है। भेद के विकल्प से पार एकाकार स्वभाव जैसा है, वैसा साक्षात् ज्ञान में-अनुभव में लेना, वही परमार्थ है। अरे, राग को व्यवहार साधन कहना, उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, इसलिए वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है। मोक्षमार्ग के साधन की भूमिका के साथ जो राग होता है, वह उसकी मर्यादा का होता है, इसलिए अनुकूल ही होता है, भूमिका से विरुद्ध राग कदापि नहीं होता;—ऐसे राग को व्यवहार-साधन कहा जाता है, तथापि उस व्यवहार के

शेष पृष्ठ 20 पर.....

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

द्वितीय अधिकार

कितने ही जीव ऐसा मानते हैं कि अपना जैनधर्म तो यह कहता है कि कन्दमूल मत खाओ, रात्रिभोजन मत करो, दया पालो तो तुम्हारा धर्म हो गया, इसलिए अपन तो इतना करते हैं... भाई! कन्दमूल मत खाओ, रात्रि भोजन मत करो इत्यादि भाव बराबर हैं; परन्तु उनमें धर्म नहीं है। आत्मा का धर्म आत्मा में होता है, आत्मा के बाहर आत्मा का धर्म नहीं होता है।

कितने ही ऐसा मानते हैं कि भगवान की भक्ति में तन्मय हो जाओ तो धर्म होता है। भाई! भगवान की भक्ति आवे उससे इनकार नहीं है; परन्तु भक्ति तो राग है। राग से धर्म किस प्रकार होगा? राग तो पुद्गल है अचेतन है; आत्मा का स्वभाव नहीं है। कोई 'भगवान की प्रतिमा में से पानी झरता है' ऐसा मानकर बहुत महिमा करता है; परन्तु पत्थर में से पानी कैसे झरेगा? कदाचित् कोई देव ऐसा करता हो, तो भी पानी तो जड़ है; उसकी क्या महिमा? वह कोई चैतन्य की जाति नहीं है। भक्ति का भाव भी राग है। वह आत्मा का स्वभाव नहीं है।

व्यवहार से घड़े को घी का घड़ा कहा जाता है, शीशी को दवा की शीशी कही जाती है, तलवार को सोने की कही जाती है; परन्तु तलवार सोने की हो नहीं जाती है। उसी प्रकार जीव को दयावाला कहा जाता है, शरीरवाला कहा जाता है, पुण्यवाला कहा जाता है –ये सब निमित्त के कथन हैं; परन्तु आत्मा शरीररूप, पुण्यरूप, दयारूप हो नहीं जाता। तो क्या व्यवहार है ही नही? है न! वस्तु रूप से है; परन्तु एक वस्तु दूसरी वस्तु की नहीं है। घी भी है और घड़ा भी है; परन्तु घड़ा घी का नहीं है। उसी प्रकार जीव भी है और राग भी है; परन्तु जीव रागी नहीं है। आत्मा वास्तव में व्यवहार से मुक्त है।

'त्यौं वरनादिक नाम सौं जड़ता लहै न जीव।' भले ही व्यवहार से रागवाला जीव, शरीरवाला जीव, पुण्यवाला जीव ऐसे अनेक नाम पड़ते हैं;

परन्तु जीव इन रूप नहीं होता। जीव तो व्यवहार से मुक्त ही है। इसीलिए शास्त्र में कहा है कि समकिती व्यवहार से मुक्त है। वह चौथे गुणस्थान से ही (व्यवहार से) मुक्त ही है, उसमें व्यवहार नहीं है। कषाय की मंदता है, वह जड़ है, चैतन्य नहीं। वास्तव में मिथ्यादृष्टि को तो कषाय की मंदता भी नहीं है। ज्ञानी को ही कषाय की मंदता होती है; परन्तु वह ज्ञानमय भाव नहीं होने से अचेतन है, जीव का भाव नहीं।

भावार्थ यह है कि शरीर अचेतन है और जीव का उसके साथ अनन्तकाल से सम्बन्ध है; तथापि जीव शरीर के सम्बन्ध से कभी अचेतन नहीं हो जाता, सदा चेतनरूप ही रहता है। जीव में जड़ की गंध भी प्रवेश नहीं पाती। पुण्य-पाप की गंध आती है; वह पुद्गल की है, जीव की नहीं। आत्मा शरीररूप नहीं होता, इतना ही नहीं, आत्मा पुण्य-पापरूप भी नहीं होता -ऐसा समझना चाहिए।

अब, दसवें पद्य में आत्मा का प्रत्यक्ष स्वरूप बताते हैं। शरीर और कर्म जीव नहीं है, राग जीव नहीं है और भेद जीव नहीं हैं तो जीव कौन है? उसका उत्तर देते हैं-

आत्मा का प्रत्यक्ष स्वरूप

निराबाध चेतन अलख, जानै सहज स्वकीव।
अचल अनादि अनंत नित, प्रगट जगतमैं जीव ।।10।।

अर्थः- जीव पदार्थ निराबाध, चैतन्य, अरूपी, स्वाभाविक ज्ञाता, अचल, अनादि- अनंत और नित्य है सो संसार में प्रत्यक्ष प्रमाण है।

भावार्थः- जीव साता-असाता की बाधा से रहित है इससे निराबाध है, सदा चेतता रहता है इससे चेतन है, इन्द्रियगोचर नहीं इससे अलख है, अपने स्वभाव को आप ही जानता है इससे स्वकीय है, अपने ज्ञानस्वभाव से नहीं चिगता इससे अचल है, आदि रहित है इससे अनादि है, अनंत गुण सहित है इससे अनंत है, कभी नाश नहीं होता इससे नित्य है ।।10।।

काव्य - 10 पर प्रवचन

आत्मा ज्ञान से प्रत्यक्ष ज्ञात हो वैसा है। आत्मा दया, दान, व्रत, भक्ति के

परिणाम से ज्ञात नहीं होता, किन्तु स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। जीव कैसा है? जीव पदार्थ निराबाध, चैतन्य, अरूपी, स्वाभाविक ज्ञाता, अचल, अनादि-अनन्त और नित्य है वह संसार में प्रत्यक्ष प्रमाण है।

भावार्थ यह है कि जीव साता-असाता की बाधा से रहित है इसलिए निराबाध है। साता और असाता में कारण बनें वैसे शरीर के परमाणु जीव में नहीं हैं। तथा साता-असाता का विकल्प भी जीव में नहीं है। इसलिए आत्मा निराबाध है। आत्मा तो आनन्द की मूर्ति है। कोई उसको पीड़ा नहीं कर सकता है। पर में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना है, वह राग है, दु:ख है; जीव नहीं।

पाँच-पच्चीस लाख रुपये मिले हों, बाग-बगीचे बनाये हों, उसमें सायंकाल के समय श्रीखण्ड-पुरी बनाकर सब खाने बैठे हों, सिर पर द्राक्ष के झूमर झूलते हों, सोने की कुर्सी पर बैठा हो- यह सब सातावेदनीय का फल है। इसमें जीव नहीं है। इसमें सुख की कल्पना करता है, वह भी जीव नहीं है। इसमें मुझे आनन्द आता है- ऐसी कल्पना दु:ख है, सुख नहीं और पुण्य भी नहीं। इनमें अपना अस्तित्व मानना -यह भ्रम का भूत (मिथ्यात्व) है।

साता के उदय से प्राप्त सामग्री भी जड़ और उसमें सुख की कल्पना होती है, वह भी जड़ है। वह तू नहीं है। तू तो आनन्द मूर्ति आत्मा है। साता की तरह ही असाता के उदय से प्राप्त सामग्री भी जड़ है और उसमें दु:ख की कल्पना होती है, वह भी जड़ है। वह तू नहीं है। सातवें नरक का संयोग होता है, वह जड़ की सामग्री है और उसमें अरुचिता होती है, दु:ख होता है, वह भी तेरी जाति नहीं है। भाई! तू तो निराबाध चैतन्य है। तू सामग्री से तो भिन्न है ही; परन्तु आकुलता से भी तेरा स्वरूप भिन्न है।

सुन्दर और कोमल शरीर मिला हो, स्त्री भी ऐसी ही सुन्दर हो और पुत्र-पुत्रादिक भी ऐसे ही हों तो इसको ऐसा होता है कि 'मैं चौड़ा और बाजार सकड़ा' -यह सब मोह का भूत है। मैं चौदह वर्ष की उम्र में पहली बार पालेज गया, तब घर के बाजू में बहुत-सी स्त्रियां इकट्ठी होकर रास लेती थीं, तो कहा कि यह क्या है? तब किसी ने जवाब दिया कि यह तो चुड़ैल है।

वहाँ छोटे बालकों को नहीं जाना चाहिए। वहाँ जाएँ और यदि उसकी बात में 'हाँ' हो जाए तो अपने को चुड़ैल लग जाती है और खून चूस लेती है। सो ऐसा हुआ या कल्पना थी ? फिर तो दुकान के काम पर लगने पर पता पड़ा कि वह कोई चुड़ैल नहीं थी। मात्र स्त्रियाँ रास लेती थीं। परन्तु यहाँ तो अज्ञानी को यह भ्रम की चुड़ैल लग गई है। जो राग, द्वेष, शरीर, संयोगादि को देखकर अपने मानता है, उसको भ्रम की चुड़ैल लग गई है, उसकी शान्ति समाप्त हो जाती है।

भगवान! तू तो निराबाध है, तेरे में पुण्य-पाप की गंध नहीं है। ऐसे निराबाध आत्मा को पहिचानकर उसकी श्रद्धा करना धर्म है। आत्मा चैतन्यस्वरूप है, इसलिए सदा चेतता है- सदा जागृत है। नींद के समय भी आत्मा जागृत है। मुझे मीठी नींद आ गई -ऐसा चैतन्य के बिना कौन जाने ?

आत्मा इन्द्रियगोचर नहीं है, इसलिए 'अलख' है। आत्मा विकल्प से गम्य नहीं है। अतीन्द्रिय महाप्रभु आत्मा खण्ड-खण्ड और जड़ इन्द्रियों द्वारा कैसे ज्ञात हो ? नहीं ज्ञात होता। आत्मा स्वयं ही अपने ज्ञान से अपने को जाने वैसा है। अपने स्वभाव को जानने के लिए इसको पर की अपेक्षा नहीं है। आत्मा सहज स्वकीय है। अन्तर में ऐसे स्वरूपवान आत्मा को पहिचानकर उसकी श्रद्धा-दृष्टि और ध्यान करना ही आत्मज्ञान है और वही धर्म है।

नोट- इससे आगे नाटक समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन क्रमांक 35 अनुपलब्ध है; अत: मात्र काव्य व अर्थ दिया जा रहा है।

अब अजीव अधिकार का अन्तिम कलश और अन्तिम पद्य है। इसमें भेद-विज्ञान का परिणाम बताते हैं।

अनुभव विधान

रूप-रसवंत मूरतीक एक पुद्गल,
रूप बिनु औरु यौं अजीव दर्व दुधा है।
चारि हैं अमूरतीक जीव भी अमूरतीक,
याहितैं अमूरतीक-वस्तु-ध्यान मुधा है ।।

औरसौं न कबहूं प्रगट आप आपुहीसौं,
ऐसौ थिर चेतन-सुभाउ सुद्ध सुधा है।
चेतन कौ अनुभौ अराधैं जग तेई जीव,
जिन्हकौं अखंड रस चाखिवेकी छुधा है ।।11।।

अर्थः- पुद्गलद्रव्य वर्ण रस आदि सहित मूर्तिक है, शेष धर्म, अधर्म आदि चार अजीवद्रव्य अमूर्तिक हैं, इस प्रकार अजीवद्रव्य मूर्तिक और अमूर्तिक दो भेद रूप है; जीव भी अमूर्तिक है इसलिये अमूर्तिक वस्तु का ध्यान करना व्यर्थ है। आत्मा स्वयंसिद्ध, स्थिर, चैतन्यस्वभावी, ज्ञानामृत -स्वरूप है, इस संसार में जिन्हें परिपूर्ण अमृतरस का स्वाद लेने की अभिलाषा है, वे ऐसे ही आत्मा का अनुभव करते हैं।

भावार्थः- लोक में छह द्रव्य हैं, उनमें एक जीव और पाँच अजीव हैं, अजीव द्रव्य मूर्तिक और अमूर्तिक के भेद से दो प्रकार के हैं, पुद्गल मूर्तिक है और धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चार अमूर्तिक हैं। जीव भी अमूर्तिक है जबकि जीव के सिवाय अन्य भी अमूर्तिक हैं तो अमूर्तिक का ध्यान करने से जीव का ध्यान नहीं हो सकता, अतः अमूर्तिक का ध्यान करना अज्ञानता है, जिन्हें स्वात्मरस आस्वादन करने की अभिलाषा है उन्हें मात्र अमूर्तिकता का ध्यान न करके शुद्ध चैतन्य, नित्य, स्थिर और ज्ञान स्वभावी आत्मा का ध्यान करना चाहिए।।11।। **क्रमशः**

.....पृष्ठ 15 का शेष

आश्रय से कोई सिद्धि नहीं है; सिद्धि तो परमार्थ साधन से ही है। आत्मा के ज्ञान की भाँति सभी निर्मल पर्यायों में भी निश्चय-व्यवहार को इसी प्रकार समझ लेना। जितना भेदरूप व्यवहार है अथवा जितना पर के साथ सम्बन्ध बतलाते हैं—वह सब व्यवहार कोई प्रयोजनरूप नहीं है, अर्थात् उसके आश्रय से मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं होती। अभेदरूप जो परमार्थस्वभाव है, उसके साथ ही निर्मल पर्याय की अभेदता है और उस अभेद के आश्रय से ही मोक्षमार्गरूप प्रयोजन की सिद्धि होती है। इसलिए पर से निरपेक्ष ऐसा वह शुद्धतत्त्व ही अनुभवनीय है।

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -22, अंक-3-4

सम्मेदशिखरजी पर विशेष

मानसिक शान्ति के अनूठे केन्द्र - जैन तीर्थ

भारत एक संस्कृति प्रधान सम्पन्न देश है। जहाँ की संस्कृति के गौरव हमारे पवित्र तीर्थस्थल है। भारत में प्रत्येक संस्कृति व धर्म के तीर्थक्षेत्र है। और उन पवित्र स्थलों पर मनुष्य जाकर आत्मिक शांति का अनुभव करता है। **तीर्थ से अभिप्राय है पुण्य स्थान, अर्थात् जो अपने में पुनीत हो और अपने यहाँ आनेवालों में भी पवित्रता एवं शांति का संचार कर सके।** जैन, बौद्ध और सिखों के अलावा, ईसाई, पारसी, ताओ, शिंतो धर्मों में भी तीर्थों की मान्यता है। भारत में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, बौद्ध, ईसाई धर्म के अनेकानेक तीर्थस्थल हैं। उन्हीं में जैनधर्म के भी भारतवर्ष में अनेकानेक तीर्थस्थल हैं। उदाहरणार्थ अष्टापद, शाश्वत सम्मेदशिखर, गिरनार, चंपापुर, पावापुर, कैलाशपर्वत, सोनागिरी, बावनगजा, ऊन, बडवानी, चूलगिरी इत्यादि।

इन सभी तीर्थस्थलों की तीर्थयात्रा का धार्मिक और आध्यात्मिक महत्त्व भी माना जाता है। तीर्थयात्रा करने का महत्त्व हमारे शास्त्रों और पुराणों में भी वर्णित है। हम सभी तीर्थक्षेत्रों पर जाने का मुख्य उद्देश्य हमारे ईश्वर-साधु सन्तों ने किस प्रकार आत्म-आराधना, तपश्चर्या उस स्थान विशिष्ट पर जाकर की है, इसका सम्यक् बोध हमें तीर्थक्षेत्र पर जाकर ही होता है। हमें भी आत्मिक शांति व पुण्य लाभार्थ उन-उन तीर्थस्थलों पर अवश्यमेव जाना चाहिए।

आगम के आलोक में तीर्थ -

तीर्थों का नामोल्लेख करते हुए, दिगम्बर परम्परा के शिरमोर आचार्य कुन्दकुन्ददेव प्राकृत भक्ति के अन्तर्गत निर्वाणभक्ति में लिखते हैं—

अट्ठावयम्मि उसहो, चंपाए वासुपूज्जजिणणाहो
उज्जंते णेमिजिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥1॥

अर्थात्- अष्टापद (कैलाशपर्वत) पर ऋषभनाथ, चम्पापुर में वासुपूज्य जिनेन्द्र, ऊर्जयन्त गिरि (गिरिनार पर्वत) पर नेमिनाथ और पावापुर से महावीरस्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए हैं।

वीसं तु जिणवरिंदा, अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा।
सम्मेदे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥2॥

अर्थात्- जो देव और असुरों के द्वारा वंदित हैं तथा जिन्होंने समस्त क्लेशों को नष्ट कर दिया है, ऐसे बीस जिनेन्द्र सम्मेदाचल के शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, उन सबको नमस्कार हो।

पुनः रत्नत्रय को तीर्थरूप में घोषित करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द बोधपाहुड़ (अष्टपाहुड़), गाथा 27 में लिखते हैं —

जं णिम्मलं सुधम्मं सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।
तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि सतिभावेण॥

अर्थात् - जिनमार्ग में वह तीर्थ है जो निर्मल उत्तम क्षमादिक धर्म तथा तत्त्वार्थश्रद्धान सहित (निर्मल सम्यक्त्व सहित) बारह प्रकार के तप, षट्काय के जीवों की रक्षा करना इस प्रकार जो निर्मल संयम और सम्यग्ज्ञान में जीवादि पदार्थों का यथार्थ ज्ञान करते हैं अर्थात् ऐसे रत्नत्रयधारी मुनिराज वे '**तीर्थ**' हैं।

प्रवचनसार की तात्पर्यवृत्ति टीका में आचार्य जयसेन तीर्थ की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि —

तेनोत्तीर्ण संसार समुद्रत्वात् अन्येषां तरणोपायभूतत्वाच्च तीर्थम्।

अर्थात् - जो स्वयं संसार-सागर से पार हुए होने के कारण तथा दूसरे को तिरने के उपायभूत होने से तीर्थ स्वरूप है।

आगम बतलाता है कि अतीत के अनन्त काल में अनन्त तीर्थंकर हुए हैं। वर्तमान में ऋषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकर हुए हैं और भविष्यत् में चतुर्विंशति तीर्थंकर होंगे। ये भूत, वर्तमान और भविष्यत्काल के सभी तीर्थंकर धर्म के मूल स्तम्भस्वरूप शाश्वत् सत्यों का समानरूप से प्ररूपण करते रहे हैं, कर रहे हैं और करते रहेंगे। धर्म के मूल तत्त्वों के निरूपण में एक तीर्थंकर से दूसरे तीर्थंकर का किंचिन्मात्र भी भेद न कभी रहा है और न कभी रहेगा। पर प्रत्येक तीर्थंकर अपने-अपने समय में देश, काल, जनमानस की ऋजुता, तत्कालीन मानव की शक्ति, बुद्धि, सहिष्णुता आदि को ध्यान में रखते हुए उस काल के मानव के अनुरूप धर्म-दर्शन का प्रवचन करते हैं। अतः **प्रवचन** व **रत्नत्रय** को भी जिनागम में **तीर्थ संज्ञा** प्रदान की गयी है।

देशकाल के प्रभाव से जब तीर्थ में नाना प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, अनेक भ्रान्तियाँ पनपने लगती हैं और तीर्थ, विलुप्त, विशृंखलित एवं

शिथिल होने लगता है, उस समय दूसरे तीर्थंकर का समुद्भाव होता है और वे विशुद्धरूपेण नवीन तीर्थ की स्थापना करते हैं। अत: वे तीर्थंकर कहलाते हैं।

तीर्थ का स्वरूप-

तीर्थंकर शब्द तीर्थ उपपद कृञ्+अप् से बना है। इसका अर्थ है जो तीर्थ—धर्म का प्रचार करे, वह तीर्थंकर है। तीर्थ शब्द भी तृ+थक् से निष्पन्न है। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार '**तरति पापादिकं यस्मात् इति तीर्थम्**' अथवा '**तरति संसार-महार्णवं येन तत् तीर्थम्**' अर्थात् जिसके द्वारा संसार महार्णव या पापादिकों से पार हुआ जाये, वह तीर्थ है। इस शब्द का अभिधागत अर्थ घाट, सेतु या गुरु है और लाक्षणिक अर्थ, धर्म है। तीर्थंकर वस्तुत: किसी नवीन सम्प्रदाय या धर्म का प्रवर्तन नहीं करते, वे अनादिनिधन आत्मधर्म का स्वयं साक्षात्कार कर वीतरागभाव से उसकी पुनर्व्याख्या या प्रवचन करते हैं। तीर्थंकर को मानव-सभ्यता का संस्थापक नेता माना गया है। ये ऐसे श्लाकापुरुष हैं, जो सामाजिक चेतना का विकास करते हैं और मोक्षमार्ग का प्रवर्तन करते हैं।

तीर्थ का अर्थ 'पुल' या 'सेतु' है। कितनी ही बड़ी नदी क्यों न हो, सेतु द्वारा निर्बल-से-निर्बल व्यक्ति भी उसे सुगमता से पार कर सकता है। तीर्थंकरों ने संसाररूपी सरिता को पार करने के लिये धर्मशासनरूपी सेतु का निर्माण किया है। इस धर्मशासन के अनुष्ठान द्वारा आध्यात्मिक साधनाकर जीवन को, परम पवित्र और मुक्त बनाया जा सकता है।

तीर्थ का इतिहास -

तीर्थशब्द 'घाट' के अर्थ में भी व्यवहृत है। जो घाट के निर्माता हैं, वे तीर्थंकर कहलाते हैं। सरिता को पार करने के लिये घाट की सार्वजनीन उपयोगिता स्पष्ट है। तीर्थंकरत्व मनुष्य के मोक्ष पुरुषार्थ का ही परिणाम हैं। यह न किसी के आशीर्वाद से और न किसी आर्थिक शक्ति से उसे प्राप्त होता है। स्व पुरुषार्थ से; ध्यान—तप—त्याग व आत्मिक मंथन से प्राप्त होता है।

अत: धर्म और तीर्थ, मनुष्य के पुरुषार्थ का ही सुफल है। आदि ब्रह्मा ऋषभेदव तो निर्ग्रंथ दीक्षा धारण कर जीवन का अंतिम समय त्याग-तपस्या के साथ हिमालय की एक उभरती पहाड़ी पर विसर्जित कर मोक्षगामी हो गये और आधुनिक शब्दों में अष्टापद नाम से पहचाने जाने वाले तीर्थ की स्मृति जनमानस को दे गये, जिसे भारत ने अपने ढंग से निखारा और अपने मार्गदर्शक की स्मृति

को लम्बे समय तक जीवित रखने का प्रयत्न किया। सम्भवत: ज्ञात इतिहास काल का **प्रथम तीर्थ अष्टापद है** और **जिससे तिरा जाए वे तीर्थ हैं।** तीर्थ तिरने में सहायक है। अत: तीर्थ वंदनीय हैं। मुमुक्षु साधक सन्तों ने जहाँ पर साधना की अथवा वे साधना में सफल हुए वे रजकण तीर्थ कहलाने लगे। वहाँ की धूल, मिट्टी-पाषाण और रजकण भी वन्दनीय तीर्थ कहलाने लगे।

ऋषभदेव के पश्चात् अजितनाथ भगवान धर्मतीर्थ के प्रतीक थे। उन्होंने **शाश्वत् सम्मेदाचल** को अपनी मुक्ति के स्थान के रूप में चुनकर मानवता को एक नया **तीर्थ** प्रदान किया। जैन हृदय व वांगमय ने इसे स्मृति में रखकर मानवता की भारी मदद की। इस परम्परा को बाद के कई ऋषियों, मुनियों ने जीवित रखकर इसे ही अपना मुक्तिस्थान बनाया। जब-जब तीर्थंकर मोक्षगामी हुए तो उनके चरण यहाँ स्थापित कर अपनी ऋद्धा व्यक्त कर दी और भविष्य के लिए स्मृति को ताजा रखने वालों के बल पर ये आज सुरक्षित है। चरण सहज में, बनने वाला प्रतीक चिह्न है और वही लोगों ने बनाकर पहाड़ी पर स्थापित कर दिया। स्मृति और वांगमय के माध्यम से आज भी वे महापुरुष हमारे हृदयों में जीवित है।

अध्यात्म ज्ञान-विज्ञान से समृद्ध भारत ने अपने अर्जित ज्ञान को मुक्त हृदय से देश-विदेश में फैलाया व विश्व बंधुत्व को साकार किया। इसे कई विदेशी विद्वानों ने स्वीकार किया है। इसी एकत्व का स्वरूप था कि नेमिनाथ के काल तक केवल वासुपूज्य को छोड़कर सभी ने सम्मेदशिखर को अपनी मुक्तिस्थल के रूप में चुना। वासुपूज्य **चम्पापुरी** से मुक्त हुए और नेमिनाथ **गिरनार** से मोक्ष गये। बाकी बीस तीर्थंकर सम्मेदशिखर से मोक्ष पधारे। यही कारण है कि **सम्मेदाचल हमारे हृदय में शाश्वत् तीर्थ के रूप में स्थापित है।** और अन्तिम, धर्म तीर्थ के कर्ता भगवान महावीर के **पावापुरी** से मोक्ष पधारे। इसीलिए शास्त्रों में इन सभी तीर्थों की गणना मंगलों में की गई है। वे क्षेत्रमंगल है। कैलाश, सम्मेदाचल, ऊर्जयंत (गिरिनार), पावापुर, चंपापुर आदि तीर्थस्थान अर्हंतादि के तप, केवल ज्ञानादि गुणों के उपजने के स्थान होने के कारण क्षेत्रमंगल हैं।

तीर्थ के प्रकार -

सिद्ध तीर्थक्षेत्र, कल्याणक तीर्थक्षेत्र, अतिशय तीर्थक्षेत्र

सिद्ध तीर्थक्षेत्र - सिद्धक्षेत्र वह तीर्थस्थान हैं जो योगियों की योग निष्ठा, ज्ञान-ध्यान और तप-साधना से पवित्र हो चुके होते हैं। उनमें भी सिद्धक्षेत्र का

महत्व सर्वोपरि है। वे तो महातीर्थ हैं। इन क्षेत्रों में बड़े-बड़े प्रसिद्ध पुरुष तीर्थंकर व अन्य मुनिजन सिद्ध हुए हैं। पुराण पुरुष अर्थात् तीर्थंकरों के आश्रय स्थानों अथवा उनके निमित्त कल्याणक स्थानों में ध्यान की विशेष सिद्धि होती है। **उदाहरण** - सम्मेदशिखर, सोनागिर, द्रोणगिरि, चूलगिरि इत्यादि।

कल्याणक तीर्थक्षेत्र - निर्वाणस्थान के साथ ही जैनधर्म में तीर्थंकर भगवान के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणक के पवित्र स्थानों को भी कल्याणक तीर्थक्षेत्र कहा गया है। **उदाहरण** - अयोध्याजी, हस्तिनापुर, बनारस, कम्पिलाजी, बिजौलियां इत्यादि।

अतिशय तीर्थक्षेत्र - तीर्थंकर भगवान के कल्याणक स्थानों के अतिरिक्त सामान्य केवली महापुरुषों के निर्वाण स्थान भी तीर्थवत पूज्य हैं। वहाँ निरन्तर यात्रीगण आते-जाते हैं, उस स्थान की विशेषता उन्हें वहाँ ले जाती है। वह एकमात्र आत्मसाधना के चमत्कार की द्योतक होती है। उस पवित्र क्षेत्र पर या तो किसी पूज्य साधु ने उपसर्ग सहन कर अपने आत्मबल का चमत्कार प्रकट किया होगा अथवा वह स्थान अगणित आराधकों की धर्माराधना और सल्लेखनाव्रत की पालना से दिव्यरूप पा लेता है। वहाँ पर अद्‌भुत और अतिशयपूर्ण दिव्य मूर्तियाँ और मन्दिर, मुमुक्षु के हृदय पर ज्ञान-ध्यान की शान्तिपूर्ण मुद्रा अंकित करने में कार्यकारी होते हैं। इन्हें **अतिशय क्षेत्र** कहा जाता है। **उदाहरण** - देवगढ़, मक्सी, पटनागंज, गोलाकोट, विपुलाचल इत्यादि।

मानसिक शान्ति के अनूठे केन्द्र-

तीर्थक्षेत्र हमारी सांस्कृतिक धरोहर एवं मानसिक शान्ति के अनूठे केन्द्र व सकारात्मक ऊर्जा के केन्द्र है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही श्रावकगण, तीर्थंकरों की जन्मभूमियों, सिद्धक्षेत्रों, अन्य कल्याणक क्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों आदि की वन्दना कर स्वयं को कृतकृत्य व मानसिक शांति का अनुभव करते हैं। तीर्थों की प्राकृतिक छटा सुरम्य व मनमोहक होती है। प्राचीन तीर्थों की शिल्पकला आज की शिल्पकला की तुलना में श्रेष्ठतम रही है और हमारे देश में इसके प्रमाण स्वरूप कई तीर्थ आज भी विद्यमान है। देवगढ़, पपौरा, खजुराहो आदि की मूर्तियों के अवलोकन से उनकी सजीवता का आभास प्रतीत होता है। मन में शांति का अनुभव होता है।

क्रमशः

कवि परिचय

पण्डितप्रवर आशाधरजी

पण्डित लालारामजी के अनुसार आपका जन्म नागोर के पास संपादलक्ष देश में माण्डलगढ़ नगर में **वि.सं. 1230-1235** के मध्य में हुआ था। आप जैनधर्मानुयायी बघेरवाल वंशी श्रावक थे। आपके पिता सल्लक्षण मांडलगढ़ के उच्चपदस्थ अधिकारी थे। आपकी माता का नाम **श्रीरत्नि** था। जब 1193 ई. में मोहम्मद गोरी ने अजमेर पर चढ़ाई करके लूटमार मचाई और उस प्रदेश पर अधिकार कर लिया तो सल्लक्षण ने अपने परिवार एवं अन्य व्यक्तियों के साथ धारानगरी में परमार नरेश विंध्यवर्मा के आश्रय में शरण ली। उस समय उनके मन्त्री विल्हण थे। आशाधरजी ने धारा में आकर पण्डित महावीर से व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया और अपने अध्यवसाय से विविध विषय पटु प्रकाण्ड विद्वान बन गए। आपकी पत्नी का नाम **सरस्वती** था।

राजधानी धारा के कोलाहल पूर्ण वातावरण से बचने व शान्ति से साहित्य साधना के विचार से वे धारा से दस मील दूर नलकच्छपुर (वर्तमान नालछा) में जा बसे। वहाँ उन्होंने अपना एक विशाल विद्यापीठ स्थापित किया। साहित्य साधना और धर्मसाधना में रत रहते हुए **1225 ई. से 1245 ई.** के बीच उन्होंने विविध विषयों के चालीस ग्रन्थों की रचना की। नय-विश्वचक्षु, प्रज्ञापुंज, कविराज, सरस्वती पुत्र, आचार्य-कल्प, सूरी आदि अलंकारों से उन्हें अलंकृत किया गया। वे जैन-अजैन सभी विद्वानों द्वारा आदर से देखे जाते थे। गृहस्थ और साधु सभी उनके प्रशंसक थे। कुछ के सन्दर्भ निम्न प्रकार है—

(1) मुनि उदयसेन—आप दिगम्बर मुनि थे व पण्डितजी के ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते थे।

(2) वादीचन्द्र विशालकीर्ति—आपको पण्डितजी ने न्यायशास्त्र का अध्ययन कराया था और उन्हें प्रतिद्वन्दियों पर वाद विजय करने में समर्थ बनाया था।

(3) यतिपति उपाध्याय मदनकीर्ति—शासन चतुर्विंशतिका का प्रणयन आपने किया था।

(4) पण्डित देवचन्द्र—पण्डितजी ने आपको व्याकरण शास्त्र में पारंगत किया था।

(5) भट्टारक विनयचन्द्र—पण्डितजी ने आपको धर्मशास्त्र का अध्ययन कराया था। इनकी प्रेरणा से पण्डितजी ने इष्टोपदेश टीका की रचना की थी।

(6) कवि अर्हदास—भव्य कण्ठाभरण पंचिका, पुरूदेव—चम्पू और मुनि सुव्रत काव्य की रचना आपने की थी।

(7) पण्डित जाजाक—इनके नित्य स्वाध्याय के लिए पण्डितजी ने त्रिषष्टि स्मृति शास्त्र की रचना की थी।

(8) कवीशविल्हण—राजा के प्रधानामात्य थे व आपके आश्रयदाता थे।

(9) बालसरस्वती महाकवि मदनोपाध्याय—प्रकाण्ड विद्वान थे व पण्डितजी के परम प्रशंसक थे।

(10) श्रेष्ठीपुत्र महिचन्द्र—इनकी प्रार्थना पर पण्डितजी ने सागार धर्मामृत की भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका लिखी।

कई श्रेष्ठी व श्रावक आपके भक्त थे व उनकी प्रेरणा पर आपने कई ग्रन्थों की रचना की। आपके पुत्र **छाहड़** भी परम विद्वान थे व राजा अर्जुन वर्मा के प्रिय पात्र थे। आपकी प्रमुख कृतियाँ—

(1) क्रियाकलाप—अमरकोश टीका व्याकरण : संस्कृत

(2) व्याख्यालंकार टीका—रूद्रट कृत काव्यलंकार टीका : संस्कृत

(3) प्रमेयरत्नाकर—न्याय : संस्कृत

(4) वाग्भट्टसंहिता—न्याय : संस्कृत

(5) भव्यकुमुदचन्द्रिका— न्याय : संस्कृत

(6) अध्यात्मरहस्य—अध्यात्म : संस्कृत

(7) इष्टोपदेश टीका—अध्यात्म : संस्कृत

(8) ज्ञानदीपिका—संस्कृत

(9) अष्टांगहृदयोद्योत—संस्कृत

(10) अनगार धर्मामृत—यत्याचार : संस्कृत

(11) मूलाराधना—भगवती आराधना टीका : संस्कृत

(12) सागारधर्मामृत— श्रावकाचार : संस्कृत

पण्डितप्रवर आशाधारजी अपने आप में एक विश्वविद्यालय थे। वे अध्ययन, अध्यापन व शास्त्र रचना को समर्पित थे। धारानगरी को ज्ञान और संस्कृति नगरी बनाने में उनका बड़ा भारी हाथ था। उनके ज्ञान की चहुँओर ख्याति थी। जीवन के अन्तिम काल में पण्डितजी संसार देह भोगों से विरक्त त्यागीव्रती श्रावक के रूप में आत्मसाधना में रत रहे। उपेन्द्र अपरनाम कृष्णराज या गजराज ने 9वीं शती के उत्तरार्ध में मालवा देश की धारा नगरी में परमार राज की स्थापना की थी। उसका उत्तराधिकारी सीयक द्वितीय अपने पोषित पुत्र मुंज को राज्य देकर 1174 ई. के लगभग जैन साधु हो गया था। वाक्पतिराज मुंज अपरनाम उत्पलराजवीर, पराक्रमी कवि और विद्याप्रेमी था। वह जैनधर्म का पोषक था। उसका उत्तराधिकारी उसका अनुज सिंधुल या सिन्धुराज था (996-1109)। प्रद्युम्नचरित्र के कर्ता मुनि महसेन का वह गुरुवत आदर करता था। उसका पुत्र भोजदेव परमार (1010-1053 ई.) भारतीय लोक कथाओं का प्रसिद्ध नायक है। वह जैनधर्म का पोषक था। उसने धार में एक महान विद्यापीठ की भी स्थापना की थी। उसके समय में धारानगरी दिगम्बर जैनधर्म का एक प्रमुख केन्द्र थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि सियक से लेकर अन्त तक सभी परमार राजा जैनधर्म के पोषक थे।

वैराग्य समाचार

गढ़ाकोटा : श्री माखनलाल जैन का आकस्मिक देह परिवर्तन हो गया है। आपका जीवन सरल स्वभावी धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत था। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन से विशेष प्रेम था।

इन्दौर : श्रीमती इमरतबाई जैन का शान्तपरिणामपूर्वक देह परिवर्तन हो गया है। आप मङ्गलार्थी समकित जैन की पड़दादी थीं।

दिवंगत आत्माएँ शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

बाल वाटिका **प्रेरक प्रसंग**

शान्ति का पुजारी

तुकाराम, अत्यन्त सरल शान्त प्रकृति के सज्जन थे। वे गृहस्थों में रहते हुए भी बड़े उदार मानव थे। घर में जो कुछ भी होता तो उसे गरीबों में बाँट देते और आप भूखे रह जाते थे।

एक दिन वे दिन भर भूखे थे। शाम को उनकी पत्नी ने कहा– जाओ, खेत में से कुछ गन्ना ले आओ। तुकाराम खेत में से गन्ना तोड़कर घर पर ला रहे थे। रास्ते में उनको कुछ गरीब आदमी मिल गये। उन गन्नों को उन्होंने गरीबों में बाँट दिये। एक गन्ना बच रहा था, उसे लेकर वे घर पर पहुँचे। उन्होंने वह गन्ना पत्नी को दे दिया। भूखी पत्नी सिर्फ एक गन्ना लाया देखकर आगबबूला हो गयी। उसने पति से गन्ना लेकर उनकी पीठ पर दे मारा, जिससे उसके दो टुकड़े हो गये। फिर भी तुकाराम बिलकुल शान्त बने रहे और अन्त में बोले– देवी! तू बड़ी बुद्धिमती है। हम दोनों को बाँटने के लिए गन्ने को आधा–आधा करना था, तूने पहले ही उसके टुकड़े कर दिये।

बलिहारी है इस अपूर्व शान्ति की ।

शिक्षा– जिनका चित्त शान्त होता है, वे हर स्थिति में शान्ति का अनुभव करते हैं, कभी उग्र नहीं होते ।

प्रिय–पाठक आपसे निवेदन है कि आपका सदस्यता शुल्क पूर्ण हो गया है और वर्तमान में कागज के दामों में वृद्धि होने के कारण पत्रिका का मासिक खर्च बढ़ गया है। अत: आपसे निवेदन है कि आप आजीवन पत्रिका (15 वर्ष) शुल्क ₹ 1000 /– कृपया शीघ्र जमा करावे, और हमें सूचित करें, जिससे पत्रिका सुचारूरूप से आपको मिलती रहे।

यह राशि आप निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं –

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	RAILWAY ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	1825000100065332
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0001000
PAN NO.	:	AABTA0995P

BHIM UPI Payments Accepted at SHRI ADINATH KUND KUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– स्वर्णपाषाण विशेष स्वर्ण बन जाता है।

उसी प्रकार– अच्छे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की सम्पूर्णता होने पर संसारी प्राणी जीवात्मा से परमात्मा बन जाता है।

जिस प्रकार– पथिकों में छाया–धूप में बैठनेवालों में अन्तर पाया जाता है। पथिक का लक्ष्य अपने गन्तव्य पर रहता है।

उसी प्रकार– मोक्षार्थी को व्रत और अव्रत के आचरण व पालन करनेवालों में फर्क पाया जाता है। व्रतादिकों का आचरण करनेवाला स्वर्गादिक स्थानों में आनन्द के साथ रहता है और व्रतादिकों को न पालता हुआ असंयमी पुरुष नरकादिक स्थानों में दुःख भोगता रहता है। लेकिन मोक्षार्थी का लक्ष्य मोक्ष पर रहता है।

जिस प्रकार– गन्ने को कोल्हू में पेलकर रस निकालते है, वह मीठा रहता है, फिर खूब औट करके गुड़ बनाते है, फिर भी मीठा ही रहता है।

उसी प्रकार– आत्मा, परीषह आने पर भी अपने ज्ञानानन्द स्वभाव को नहीं छोड़ता है। हर प्रकार के तप करते हुए भी आत्मा ज्ञानानन्दमय ही रहता है।

जिस प्रकार– धोबी कपड़े धोते हुए बहुत प्यास लगने पर भी पानी नहीं पीता, सोचता है कपड़े धोने के बाद ही पानी पीऊंगा, दिमाग में गर्मी चढ़ गई, बेसुध होकर जल में गिर गया और वही मर गया।

उसी प्रकार– मिथ्यादृष्टि संसारी जीव यह सोचते है कि इस काम के बाद, वह करने के बाद धर्म करूँगा। ऐसा कहते–कहते मरकर पता नहीं कहाँ चला जाता है। हे आत्मन् तू तुरन्त चेत, देर मत कर। पात्र जीव को एक समय की देरी किये बिना अपना कल्याण तुरन्त कर ही लेना चाहिए।

जिस प्रकार– नशे में धूर्त शराबी अपनी ज्ञानशक्ति को हीन करके अच्छे–बुरे अथवा अपने–पराये की पहचान नहीं कर पाता है, दोष शराब का नहीं, शराबी ही का है।

उसी प्रकार– कर्मों के उदय में जीव अपने गुणों की पर्याय में विपरीतता लाकर सही–गलत का, हेय–उपादेय का, सम्यक्–मिथ्यात्व का भेद नहीं कर पाता है। दोष कर्मों का नहीं, जीव का ही है। मूढ़ प्राणी मोहनीय कर्म के जाल में फंसकर शरीर, धन, स्त्री, पुत्र आदि को आत्मा के समान मानता है।

क्रमशः संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

बारहवाँ वार्षिकोत्सव हर्षोल्लासपूर्वक सम्पन्न

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय : यहाँ स्थित भगवान महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर का बारहवाँ वार्षिकोत्सव दिनांक 18 दिसम्बर 2022 को धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर पूजन-विधान, भक्ति, ध्वजारोहण, वक्तव्य आदि कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। इस अवसर पर तीर्थधाम मङ्गलायतन से समस्त मङ्गलार्थी छात्र और समस्त परिवारीजन उपस्थित थे। मुख्य अतिथि विश्वविद्यालय कुलपति श्री पी. के. दशोरा ने कहा कि हम सभी का सौभाग्य है कि हम उस विश्वविद्यालय में हैं जिसकी कीर्ति जिनालय से निरन्तर प्रकाशमान होती है। इस अवसर पर पूर्व कुलपति प्रो. के. वी. एस. एम. कृष्णा एवं कुलसचिव प्रो. दिनेश शर्मा आदि का स्वागत श्री अनिल जैन, पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र जैन ने ग्रन्थ भेंट कर किया। कार्यक्रम समन्वयक प्रो. जयन्तीलाल जैन, प्रो. सिद्धार्थ जैन ने सभी का आभार ज्ञापन किया। सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन श्री मयंक जैन ने, एवं मङ्गलार्थी समकित जैन शास्त्री ने भजन प्रस्तुति की।

पण्डित कैलाशचन्द्रजी का स्मृति दिवस

तीर्थधाम मङ्गलायतन : तीर्थधाम मङ्गलायतन के स्वप्नदृष्टा पण्डित कैलाशचन्द्रजी के स्मृति दिवस 19 दिसम्बर 2022 के अवसर पर विशेष पूजा-अर्चना, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, सायंकालीन सभा में गोष्ठी एवं पण्डितजी की वीडियो दिखाकर मनाया गया। गोष्ठी में पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री ने मङ्गलार्थी छात्रों को उनके संस्मरण तथा उनसे प्राप्त तत्त्वज्ञान के बारे में बताया। इस अवसर डॉ. सचिन्द्र जैन, मङ्गलार्थी समकित जैन शास्त्री, श्रीमती बीना लुहाड़िया, श्रीमती आलोकवर्धिनी जैन, श्रीमती अनुभूति लुहाड़िया उपस्थित थे।

तीर्थधाम चिदायतन में सहज शान्ति विधान सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन : पण्डित राजकुमारजी जैन द्वारा रचित सहज शान्ति विधान का आयोजन (अस्थाई) भगवान विराजमान के पाँच वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में दिनांक 25 दिसम्बर 2022 को सानन्द सम्पन्न हुआ। विधान के आमन्त्रणकर्ता श्री अजितप्रसाद जैन, दिल्ली; ध्वजारोहणकर्ता श्री संदीप जैन परिवार, मेरठ; विधानाचार्य पण्डित अशोक लुहाड़िया, तीर्थधाम मङ्गलायतन; पण्डित सुधीर शास्त्री, मङ्गलार्थी समकित जैन, तीर्थधाम मङ्गलायतन का भी लाभ प्राप्त हुआ। इस अवसर पर दिल्ली, ऋषीकेश, गाजियाबाद, नोएडा, खतौली, मुजफ्फरनगर, सरधना, बड़ौत, छपरोली, शामली, गजरौला इत्यादि अनेक स्थानों से पधारे साधर्मियों ने उत्साहपूर्वक विधान में भाग लिया।

फरवरी 2023 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

1 फरवरी – माघ शुक्ल 11
पण्डित बनारसीदास जयन्ती
2 फरवरी – माघ शुक्ल 12
श्री अभिनन्दन जन्म-तप कल्याणक
3 फरवरी – माघ शुक्ल 13
श्री धर्मनाथ जन्म-तप कल्याणक
4 फरवरी – माघ शुक्ल 14 **चतुर्दशी**
9 फरवरी – फाल्गुन कृष्ण 4
श्री पद्मप्रभ निर्वाण कल्याणक
11 फरवरी – फाल्गुन कृष्ण 6
श्री सुपार्श्वनाथ ज्ञान कल्याणक
13 फरवरी – फाल्गुन कृष्ण 7-8 **अष्टमी**
श्री चन्द्रप्रभ ज्ञान-मोक्ष कल्याणक
श्री सुपार्श्वनाथ मोक्ष कल्याणक
14 फरवरी – फाल्गुन कृष्ण 9
श्री पुष्पदन्त गर्भ कल्याणक
16 फरवरी – फाल्गुन कृष्ण 11
श्री श्रेयांसनाथ जन्म-तप कल्याणक
श्री ऋषभनाथ ज्ञान कल्याणक
श्री मुनिसुव्रतनाथ मोक्ष कल्याणक
19 फरवरी – फाल्गुन कृष्ण 14 **चतुर्दशी**
श्री वासुपूज्य जन्म-तप कल्याणक
22 फरवरी – फाल्गुन शुक्ल 3
श्री अरनाथ गर्भ कल्याणक
24 फरवरी – फाल्गुन शुक्ल 5
श्री मल्लिनाथ निर्वाण कल्याणक
27 फरवरी – फाल्गुन शुक्ल 8 **अष्टमी**
श्री संभवनाथ गर्भ कल्याणक
अष्टाह्निका व्रत प्रारम्भ

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित
आठवीं पुस्तक की वाचना 14 नवम्बर 2022 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम – बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी भाई-बहिनों तथा मङ्गलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन) **षट्खण्डागम (धवलाजी)**

रात्रि 07.30 से 08.30 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

08.30 से 09.15 बजे तक **समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्च्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - mang4321
youtube channel - theerthdham mangalayatan
के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000X12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम ....

पता ....

.... पिन कोड ....

मोबाइल .... ई-मेल ....

मैं '**मङ्गल वात्सल्य-निधि**' योजना की सदस्यता स्वीकार करता हूँ और मैं .... राशि जमा करवाऊँगा / दूँगा।

हस्ताक्षर

''चौथाई ग्रास दान भी अनुकरणीय''

ग्रासस्तदर्धमपि देयमथार्धमेव,
तस्यापि सन्ततमणुव्रतिना यथर्द्धिः।
इच्छानुसाररूपमिह कस्य कदात्र लोके,
द्रव्यं भविष्यति सदुत्तमदानहेतुः॥

अर्थात् गृहस्थियों को अपने धन के अनुसार एक ग्रास अथवा आधा ग्रास अथवा चौथाई ग्रास अवश्य ही दान देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हमें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जब मैं लखपति या करोड़पति हो जाऊँगा, तब दान दूँगा; बल्कि जितना धन हमारे पास है, उसी के अनुसार थोड़ा-बहुत दान अवश्य देना चाहिए।

– आचार्य पद्मनन्दि : पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका, श्लोक 230

यह राशि आप निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं –

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	RAILWAY ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	1825000100065332
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0001000
PAN NO.	:	AABTA0995P

BHIM UPI Payments Accepted at
SHRI ADINATH KUND KUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST
Account Number : 1825000100065332, IFSC Code: PUNB0001000

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/

3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

तीर्थधाम चिदायतन में

सहज शान्ति विधान की झलकियाँ

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

स्वर्णिम अवसर—

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में प्रवेश हेतु

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के आगामी सत्र में अंग्रेजी माध्यम से कक्षा सातवीं पास कर चुके एवं कक्षा आठवीं तथा ग्यारहवीं के लिए भी सुनहरा अवसर है जो भी छात्र यहाँ के सुरम्य वातावरण में उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का भी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे हमारे कार्यालय अथवा वेबसाइट से प्रवेश आवेदन-पत्र मंगाकर अपेक्षित जानकारियों एवं प्रपत्रों के साथ भरकर भेज देवें।

विदित हो कि कम से कम 60 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त विद्यार्थी ही आवेदन योग्य हैं, स्थान सीमित हैं। अत: शीघ्र ही पूर्ण जानकारी प्राप्त कर आवेदन-पत्र भेजने का अनुरोध है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन (प्रवेश फार्म, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन)
C/o विमलांचल, हरिनगर, गोपालपुरी, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001
सम्पर्क सूत्र-9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री); 7581060200 (प्राचार्य);
8279559830 (उपप्राचार्य)
info@mangalayatan.com; www.mangalayatan.com

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com